 ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

हिन्दी दलित साहित्य के 'स्वरूप' का समाजशास्त्र

डॉ0 यशवन्त वीरोदय,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

हिन्दी दलित साहित्य की प्रकृति एवं स्वरूप उसके अपने 'समाजशास्त्र' और 'सौन्दर्यशास्त्र' पर टिका हुआ है। मुद्राराक्षस की मान्यता है कि लेखन का 'समाजशास्त्र' होना चाहिए। बकौल मुद्राराक्षस ''अगर वह समाजशास्त्र नहीं है तो घटिया लेखन है, खुद सवर्णों का साहित्य इसीलिए महत्व का माना गया क्योंकि इनमें 'सवर्ण' समाजशास्त्र है, चाहे वह 'रामचरितमानस' ही क्यों न हो। दलित लेखन का मूल्यॉंकन उसका समाजशास्त्र करता है।''[1] प्रश्न उठता है कि क्या 'सवर्ण समाजशास्त्र' और 'दलित समाजशास्त्र' अलग है? मैनेजर पाण्डेय की मान्यता है कि दोनो समाजशास्त्र अलग हैं। दलित समाजशास्त्र को एवं दलित साहित्य के स्वरूप और उद्देश्य को पुराने भारतीय साहित्यशास्त्र की मदद से तय नहीं किया जा सकता। बकौल मैनेजर पाण्डेय ''साहित्यशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र ऊपरी तौर पर वर्ग, वर्ण और विचारधारा की सीमाओं से, प्रभावों से मुक्त लगते हैं, लेकिन वे मुक्त होते नहीं हैं। यह बात दुनिया भर के साहित्यशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र के बारे में सही है। भारतीय साहित्यशास्त्र की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि रस–सिद्धान्त है और इसको ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में उस साहित्य का मूल्यांकन या उस साहित्य के स्वभाव की पहचान आनन्दवादी दृष्टिकोण से कैसे हो सकती है, जिसका लक्ष्य मुक्तिबोध के शब्दों में 'सत्–चित्–वेदना' की अभिव्यक्ति है।''[2] दलित साहित्य की 'प्रकृति' एवं 'स्वरूप' पहले के साहित्य से भिन्न है और सामाजिक परिवर्तन का पक्षधर है।

साहित्यिक कृतियाँ सामाजिक संकेत होती हैं और रचना सामाजिक उत्पाद का हिस्सा है, बकौल मैनेजर पाण्डेय ''आज के जमाने में साहित्य की दुनिया केवल सौन्दर्य और प्रेम की एकांत साधना के सहारे नहीं चलती है, वह समाज के आर्थिक ढाँचे, राजनीतिक परिवेश, सामाजिक संरचनाओं और सॉंस्कृतिक संस्थाओं से बहुत दूर तक प्रभावित होती है।''[3] यदि समाज के बुनियादी ढाँचों, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेशों में असमानता है, न्याय का अभाव है, तो इनसे निजाद दिलाना भी साहित्य का दायित्व है और इन समस्याओं से निजात पाने के लिए ही दलित साहित्य लिखा जाता है और निजाद दिलाने वाली विचारधारा ही दलित साहित्य के 'स्वरूप' का निर्धारण करती है।

सन् 1950 की एक संध्या को बम्बई के कफ परेड ग्राउण्ड में 'दि अनटचेबल' के लेखक 'मुल्कराज आनन्द' ने भारतीय संविधान के निर्माता डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को **'नमस्कार'** किया। इसके पश्चात डॉ0 अम्बेडकर ने अभिवादन का जवाब दिया–

ओम मणि पद्मये! (कमल को खिलने दो)

'मैं नमस्कार की तुलना में इस अभिवादन को अधिक पसंद करता हूँ।' इसके तुरन्त बाद मुल्कराज आनन्द के मुख से निकला ''मैं आपसे

सहमत हूँ, हम भी कितने विचारशून्य हैं, हम शब्दों के अर्थ की जाँच परख भी नहीं करते और उन्हें अपना लेते हैं। यह सच है नमस्कार का अर्थ होता है– **मैं आपके आगे नमन करता हूँ।**''[4]

डॉ0 अम्बेडकर ने जवाब दिया– ''इससे समर्पण को निरन्तरता मिलती है। जबकी कमल को खिलने दो में बोध जगाने की प्रार्थना है।''[5]

'डॉ0 अम्बेडकर' और 'मुल्कराज आनन्द' के उपर्युक्त वार्तालाप को यदि समाजशास्त्रीय नजरिए से देखा जाय तो बहुत सी बातें सामने आती हैं। 'नमस्कार' शब्द से अधीनता का बोध होता है, 'मैं आपके आगे नमन करता हूँ' या आपकी अधीनता स्वीकार करता हूँ, आप मुझसे श्रेष्ठ हैं आदि भाव एक ही प्रकार के हैं। ये भाव समर्पण को प्राथमिकता देते हुए समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को नकारते हैं और सामंती मानसिकता का परिचय देते हैं। वहीं **'ओम मणि पद्मये!'** में बोध जगाने का भाव है, चेतना जागृति का सूचक है, 'विवेक' एवं 'तर्कसंगत' राह पर चलने का संदेश है इस प्रकार इस संबोधन में 'आत्मसम्मान' का बोध होता है। अभिवादन करने वाला 'आत्मसम्मान' के साथ सामने वाले की प्रतिष्ठा का भी 'सम्मान' कर रहा होता है।

हिन्दी दलित साहित्य, दलित मुक्ति के व्यापक सामाजिक, साँस्कृतिक आन्दोलन का अंग है। यह आन्दोलन एक 'वैचारिक भूमि' पर स्थित है। चार्वाक, बुद्ध, कबीर–रैदास से लेकर फुले–अम्बेडकर आदि ने जो विमर्श विकसित किया, जो विचारधाराएं जनमानस के सामने रखीं वही विचारधारा दलित साहित्य का आधार बनी। इन्ही विचारकों की विचारधाराओं पर चलकर दलित साहित्यकारों ने हिन्दी दलित साहित्य का जो स्वरूप निर्धारित किया। उसी के आधार पर इस साहित्य की प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं।

जिस प्रकार मौसम वैज्ञानिक 'वायुमण्डल' का दबाव मापने के लिए 'वैरोमीटर' का प्रयोग करते हैं, वैसे ही दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं में एक 'चेतना का वैरोमीटर' प्रयोग करते हैं। जो दलित समाज को आगामी सामाजिक स्थितियों से आगाह करता है, साथ ही यह भी कि दलित समाज अपने आप नीचे नही गिर गया है उसके पीछे कुछ कारण अवश्य हैं, दलित साहित्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से उन्हीं कारणों को उजागर करते हैं। जिस समय रचना लिखी गयी, उसकी गवाही रचना में देनी आवश्यक होती है, अन्यथा काल का भ्रम उत्पन्न हो सकता है। दलित साहित्य काल की गवाही भी देता है।

परम्परागत साहित्य से भिन्न 'हिन्दी दलित साहित्य' ने रोमानी साहित्यकारों को 'फैज' के शब्दों में बताया कि 'और भी ग़म है जमाने में मुहब्बत के सिवा', जहाँ परम्परागत हिन्दी साहित्य प्रेम के इर्द–गिर्द ही सिमटा हुआ था, बिस्तर की सलवटों पर दम तोड़ रहा था वहीं हिन्दी दलित साहित्य ने 'साहित्य' को बिस्तर की सलवटों से उतारकर सड़क पर खड़ा कर दिया है, जहाँ से वह बेरहम दुनिया दिखाई दे सके, जिसमें एक दलित सामाजिक गुलामी के मकड़जाल में तड़पते–तड़पते दम तोड़ देता है।

हिन्दी दलित कविता 'सामाजिक गुलामी' के 'पीड़ा बोध' से उपजी है। यह पीड़ा–बोध उन सारी अवधारणाओं को ध्वस्त कर देता है जो रंगीन पन्नों पर 'जन्नत सजाने' के कोरे सपनों को आकार देती है। यथार्थ की कंकड़ीली–पथरीली जमीन पर लहुलुहान होकर चलते हुए दलित कविता ने अपनी जगह बनायी है, शायद यही कारण है कि हिन्दी दलित कविता की शुरुआत दर्द से होती है–

''दिल में दर्द है, आँखों से सजल लिखता हूँ।
सामने दुनिया है, इसलिए 'ग़जल' लिखता हूँ।।

× × ×

पढ़ा था वर्क में जन्नत, मिली कुछ दूसरी जमीं है।

पक कर रिस रही है तो, मैं घाव लिखता हूँ।।''[6]

'हिज़ाब' शीर्षक से प्रकाशित इस 'गज़ल' में यह बात उभरकर सामने आती है कि दलितों के सामने एक ऐसी दुनिया है, जिसको देखकर उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। दलित कवि जानता है, वर्क में (पन्नों में) लिखी हुई बातें, जो इस संसार को जन्नत और सुखमय बनाने के लिए कही गयी हैं, उनका दलित जीवन से कोई वास्ता नहीं है, उनकी सभ्यता, उनके सुधारवादी कार्यक्रम, उनकी सुख की दुनिया अलग है और दलितों की दुनिया अलग है। वे अपनी सुख की दुनिया में दलितों को शामिल करना नहीं चाहते, शायद यही कारण है कि 'गज़ल' की पंक्तियों में 'दूसरी ज़मी' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका भी अपना समाजशास्त्र है। प्रत्येक गाँव में सछूत और अछूत दो भाग हैं सछूत गाँव के भीतर रहते हैं, अछूत गाँव के बाहर प्रायः दक्षिण दिशा में, इन दलित बस्तियों को जो प्रायः गाँव के दक्षिण में बसायी जाती हैं महारवाड़ा, मंगवारा, चमटोली, पासियाना आदि नामों से पुकारा जाता है। 'गज़ल' की 'मिली दूसरी ज़मी है' पंक्ति में ये भाव यथार्थ हो उठते हैं।

साहित्य के दो प्रमुख स्तर होते है–

1. संवेगात्मकता
2. संवेदना

- संवेगात्मकता का संबन्ध 'बाह्य उद्दीपकों' से होता है।
- संवेदना गहरे स्तर पर भोगे हुए यथार्थ से संबद्ध होती है।

'हिन्दी दलित साहित्य' पाठकों को गहरे आधार पर संवेदनात्मक बना देती है। फलस्वरूप पाठक आत्मान्वेषण की प्रक्रिया से संबद्ध हो जाता है, ऐसा मालूम होता है कि युग की सम्पूर्ण विषमताएँ, विद्रूपताएँ उसके व्यक्तित्व में आकर पूँजीभूत हो गयी हैं। फलस्वरूप 'पाठक' बेचैन हो उठता है कि विषमताओं का अंत कैसे हो?

बकौल राजेन्द्र यादव ''साहित्य जिन तत्वों से अमर, स्थायी या सार्वभौम होता है उनमें तीन मुझे सबसे प्रमुख लगते है''–

(i) संघर्ष

(ii) यातना (सफरिंग)

(iii) विज़न''[7]

हिन्दी दलित साहित्य में ये तीनों तत्व विद्यमान हैं। दलितों के लिए ऐतिहासिक परिस्थितियाँ सकारात्मक नहीं रही हैं, शोषण, दमन और अत्याचार के खिलाफ दलितों ने सदियों से संघर्ष किया, संघर्ष के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की यातनाओं से गुजरना पड़ा। यातना में वह शक्ति है, जो दृष्टि देती है। यातना से विज़न का निर्माण होता है। विज़न अर्थात दृष्टि हमें क्या करना है?

प्रश्न उठता है– हमें क्या करना है?

उत्तर मिलता है– हमें समतामूलक समाज बनाना है।

इस प्रकार हिन्दी दलित साहित्य का मूल स्वर है– वर्णविहीन, जातिविहीन, समतामूलक समाज की स्थापना, जिसके लिए दलित साहित्यकार प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए दलित साहित्यकारों ने परम्परागत व्यवस्था का वैज्ञानिक ढंग से मूल्यॉकन करते हुए कई अवधारणाओं को नकारा और कई नयी चीजों को स्वीकार किया और उसे अपने साहित्य में स्थान दिया। दलित साहित्यकारों द्वारा कुछ को स्वीकारने एवं कुछ को नकारने के चलते हिन्दी दलित साहित्य की प्रवृत्तियों का विकास हुआ। हिन्दी दलित साहित्य की प्रत्येक प्रवृत्ति अपना ठोस उद्देश्य लेकर विकसित हुई है।

हिन्दी दलित साहित्य व्यक्तिवाद, अधिनायकवाद का विरोधी है और लोकतंत्र का पक्षधर है। 'व्यक्तिवादी' व्यक्ति सिर्फ अपने हित की बात सोचता है और महत्वाकांक्षी होता है,

उसकी यह 'महत्वाकांक्षा' परिस्थितियों की अनुकूलता में 'अधिनायकवाद' को जन्म देती है। 'अधिनायकवाद' से तानाशाही पनपती है जो लोकतंत्र के लिए हानिकारक है। लोकतंत्र में पनप रहा अधिनायकवाद 'आम आदमी' के लिए खतरनाक है। दलित साहित्यकार डॉ0 एन0 सिंह की कविता 'आदमी, चुनाव और भाषण' में इसी प्रकार के छद्म लोकतंत्र के चरित्र को सामने लाया गया है–

''वह भूखा आदमी
फिर आश्वासनों की भीड़ में भटक गया है
लोकतंत्र की रस्सी को गले में डालकर
चुनाव के पेंड पर लटक गया है।

× × ×

तंत्र को ऐसा यंत्र बनाया जा रहा है
जिससे लोक का गला काटा जा सके
बे आवाज तरीके से।''[8]

यह है वह 'छद्म लोकतंत्र' की तस्वीर जहाँ लोकतंत्र के आवरण में, लोकतंत्र के समानान्तर एक ऐसा तंत्र पल बढ़ रहा है, जिसमें आम आदमी की आवाज दब सी जाती है, लोकतंत्र के आवरण में ही 'लोक का गला काटने वाला तंत्र' बेहद खतरनाक है। सही लोकतंत्र का निर्माण कैसे होगा? दलित साहित्य इसको लेकर काफी चिंतित है। डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान पर बहस करते समय संविधान सभा में चेतावनी दी थी–

''स्वतंत्रता, समानता और वन्धुता के आधार पर अधिष्ठित सामाजिक जीवन ही लोकतंत्र कहलाता है। भारत में समता का पूर्ण अभाव है। राजनीति में हमें समानता मिली है, परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में विषमता अभी व्याप्त है। हमें इस विषमता को तुरन्त दूर करना चाहिए।''[9]

लोकतंत्र पर जो खतरा मड़रा रहा है, वह व्यक्तिवादी मनोवृत्ति वाले लोगों के कारण। व्यक्तिवादी लोग निजी स्वार्थ के लिए समाज में वैमनस्यता का बीज बोते हैं, जिससे असमानता की पौध खड़ी होती है। 'दलित साहित्य' समाज के अगुवा बने हुए उन नेताओं का विरोध करता है, जो कथनी और करनी में अंतर रखते हैं, जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्मवाद की दुहाई देकर व्यक्ति के 'संकल्प स्वातन्त्रय' का गला घोंटते हैं और जो दबाव बनाकर मानव गरिमा को ठेस पहुँचाते हैं। मा0 यशवन्त 'वीरोदय' ने अपनी 'हनन' कविता में ऐसे व्यक्तिवादी स्वार्थी लोगों को वेनकाब किया है–

''उन लोगों से मैं क्या कहूँ जो
जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्मवाद
और तो और भातृत्ववाद की दुहाई देकर
व्यक्ति के 'संकल्प स्वातन्×य' व
उसके व्यक्तित्व का गला घोंट देते हैं।

खास तौर से उस उम्र में जब
व्यक्ति अपनी सोच को रूप देने के लिए खड़ा होता है,
ऐसे में वे लोग, अपने आदर्श को भूलकर
अपनी वाकपटुता या अधिकार के भाव से
रातोंरात सबके व्यक्तित्व का हनन कर
जीवन में कृत संकल्पित भाव को
कुचलना चाहते हैं।
उन लोगों से मैं क्या कहूँ जो,
कथनी व करनी में अंतर रखते हैं
और दवाब में आकर आत्महनन करते हैं।
शायद नहीं रहना चाहिए पृथ्वी पर

कोई स्थान उनके लिए

जो मूक सत्य हन्ता हैं।''[10]

'हनन' शीर्षक से ही मानवाधिकार हनन का बोध होता है। इस कविता में 'दलित साहित्य' के कुछ पहलू दृष्टिगत होते हैं। दलित साहित्य का प्रयास, समाज में चेतना जगाकर मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का रहा है। यह तभी संभव है जब 'मानव गरिमा' एवं उसके 'संकल्प स्वातं×य' का सम्मान' किया जाय, साथ ही ऐसे लोगों का विरोध किया जाय जो कवि के शब्दों में 'मूक सत्य हन्ता हैं।' 'मूक सत्य हन्ता' वे लोग हैं जो सत्य जानकर भी, सत्य कहने का साहस नहीं उठा पाते या किसी परिस्थिति, लोभवस मूक रह जाते हैं।

संदर्भ

1. मुद्राराक्षस का साक्षात्कार – 'दलित साहित्य विशेषांक', उत्तर–प्रदेश, सितम्बर–अक्टूबर 2002, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उ0 प्र0, लखनऊ, पृ0 168
2. मैनेजर पाण्डेय का साक्षात्कार – वही, पृ0 183
3. मैनेजर पाण्डेय – 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' – हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ – 1989, पृ0 'गप'
4. मुल्कराज आनन्द – डॉ0 अम्बेडकर एक साक्षात्कार, 'अम्बेडकर इन इण्डिया' अगस्त – 2005, पृ0 2
5. वही, पृ0 2
6. यशवन्त 'वीरोदय' – 'हिज़ाब', डॉ0 अम्बेडकर सेवा संस्थान – देवरिया (स्मारिका), मई–2004, पृ0 20
7. ओम प्रकाश वाल्मीकि – 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली – 2001, पृ0 48
8. डॉ0 एन सिंह – 'दर्द के दस्तावेज' – आनन्द साहित्य सदन – अलीगढ़ – 1992,

   पृ0 127
9. कंवल भारती – डॉ0 अम्बेडकर : एक पुनर्मूल्यांकन, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर उ0 प्र0 1997, पृ0 38
10. यशवन्त 'वीरोदय' – 'हनन' – पत्रिका 'तरुण घोष' – 2000, ई0सी0सी0इलाहाबाद,

    पृ0 63

Copyright © 2016 Dr. Yashvant Veeroday. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.